संपादकीय

इस लडाई का अन्त कब होगा?

वर्तमान समय युद्धों का समय है। आज एक ओर धर्म को आगे रखकर व्यापक तौर पर कई तरह के छोटे-बडे युद्ध चल रहे हैं। दूसरी ओर पानी के लिए, पर्यावरण-पारिस्थितिक संरक्षण व सुरक्षा के लिए संघर्ष चल रहे हैं। कहीं बाज़ार केलिए, कहीं प्रभुता स्थापित करने केलिए संघर्ष चल रहे हैं। धर्म के नाम पर चल रहे संघर्षों के साथ भाषा के नाम पर चल रहे संघर्षों तथा संस्कृति के नाम पर चल रहे संघर्षों को एकसाथ रखकर उसकी परख करनी चाहिए। ये संघर्ष अक्सर फासीवादी रुझान दिखा रहे हैं, और पहले भी दिखा रहे थे। इसका इतिहास छोटा नहीं है और वह यही बता रहा है कि उसका अन्त करना आसान कार्य नहीं हैं, और निकट भविष्य में मुमकिन भी नहीं हैं। क्योंकि ये संघर्ष सतही तो नहीं है, और ये सुनियोजित एवं संकीर्ण भी है। जाति, धर्म, नस्ल, वंश, परम्परा इत्यादि के साथ अन्य कई बातें इससे जुडी हुई हैं। अन्य तत्वों के साथ राजनीतिक एवं आर्थिक मामला भी जुडा हुआ है। असल में मनुष्य के विश्वास, आस्था, नैतिकता, नियति, पाप-पुण्य की बात तथा धर्मभीरुता को समाविष्ट करके इसे जटिल से जटिलतर बनाने का प्रयास हो रहा है। आज पूरे विश्व में संप्रदाय, नस्ल, रंग और भाषा के नाम पर संघर्ष चल रहे हैं। पहले फ्रांस, आस्ट्रेलिया, स्विट्ज़रलैंड, कानडा जैसे देश इससे बच रहे थे। लेकिन आज इसकी हलचल से ये देश भी मुक्त नहीं हैं। इस संघर्ष की सबसे बडी विडंबना यह है कि इसमें एक ही देश के लोग आपस में लड रहे हैं या लडने को मजबूर हो रहे हैं। विश्व स्तर पर आइ.एस.(IS) के नेतृत्व में यह काम जारी है, उसके साथ अन्य कई संगठन भी शामिल हो रहे हैं। अब उनका निशान मुख्य रूप से पश्चिमी देश होने पर भी खाडी के देश के लोग ही जाने-अनजाने उनका शिकार हो रहे हैं। अन्य देश भी उसके खतरे से खाली नहीं है।

धर्म भक्ति से गहन संबन्ध रखता है। भक्ति मार्ग में आत्मपीडा के द्वारा मुक्ति की कामना सभी धर्मों की मूल संकल्पना है। वहाँ पर-पीडा केलिए जगह कहाँ है? सांप्रदायिकता पर-पीडा पर आधारित है और उसमें आत्मपीडा व मुक्ति केलिए जगह नहीं है। कहने का मतलब यह है कि आध्यात्मिकता से उसका कोई संबन्ध नहीं है और धर्म पर आधारित सांस्कृतिक तत्वों का दावा करने का अधिकार भी उसे नहीं है। भारत में रिलीजीयन (Religion) के पर्यायवाची शब्द के रूप में धर्म का प्रचलन बाद में हुआ। शायद संस्थागत धर्मों के आगमन के बाद ही हुआ था। उसके पहले वह शब्द दायित्व, कर्तव्य जैसे शब्दों के समानार्थी शब्द के रूप में प्रचलित था। उसका संस्थागत रूपांतरण प्राच्यवाद की देन है। धर्म के प्रचार-प्रसार का काम संस्थागत धर्म का अंग है। धर्म का संस्थागत रूप ही धार्मिक बैर का हेतु है।

भारत के सन्दर्भ में धार्मिक बैर का आरंभ प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के तुरंत बाद शुरु हुआ, जो आज भी जारी है। कुछ कोनों से इसका आरंभ और भी पहले सिद्ध करने का प्रयास भी हो रहा है और उसके अनुसार इतिहास की पुनर्रचना भी व्यापक ढंग से हो रहा है। आदिकाल से माननेवालों और मध्यकाल से माननेवालों को भी हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं। क्योंकि उनका भी उद्देश्य नेक नहीं है। असली और कारगर ढंग से धर्म को राजनीति में लाने का प्रयास अंग्रेज़ों ने किया था। औरंगसेब ने अपने ही भाई के खिलाफ मजहब का दुरुपयोग सत्ता हासिल करने केलिए किया था। अंग्रेजों ने अधिकार एवं तद्वारा व्यापार को कायम रखने केलिए विभिन्न धर्मों के बीच फासला खडा किया। फूट डालो और शासन करो नीति को उन्होंने लागू किया। दोनों धर्मावलंबियों को प्रोत्साहन एवं प्रेरणा देकर उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन को ढीला कर दिया। इस प्रकार उन्होंने धर्म का राजनीतिकरण किया ताकि राष्ट्रीयता के आधार रूप में धर्म को प्रतिष्ठित किया। इसके हिस्से के रूप में मुस्लिम लीग, हिन्दू महसभा आदि अस्तित्व में आ गए। फिर इसका क्रमिक विकास स्वतंत्रता आन्दोलन के अनुसार हुआ। बीच-बीच में उतार-चढाव होता रहा, पर हम कभी भी पूर्णविराम नहीं डाल सकें।

राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद और धर्म के बीच कोई तार्किक संबन्ध नहीं है। इतिहास इसका प्रमाण प्रस्तुत करता ही है। सत्ता की राजनीति ऐसा भ्रम फैला रही है और पहले भी ऐसा प्रयास हुआ था। यह सही है कि उसका भूत वर्तमान प्रयास को ऊर्जा प्रदान करता है। सोलहवीं सदी से याने उपनिवेश विरोध के आरंभ के साथ भारत में राष्ट्रवाद का स्वर मुखरित होने लगा था। सबसे पहले केरल के कुञ्ञाली मरक्कार ने पुर्तुगालियों का विरोध किया था। फिर बंगाल में अँग्रेज़ों के खिलाफ सिराजदौला का संघर्ष इसका प्रमाण ही है। लेकिन बाद में, प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद धर्म के नाम पर आरक्षण और अलग चुनाव प्रणाली छल-कपट का ही हिस्सा थे। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों के द्वारा द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत कायम किया गया। असल में इस्लाम और मुस्लिम लीग तथा हिन्दू और हिन्दू महासभा के बीच काफी अन्तर है। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों धर्मों से कुछ तत्व अपनाती थीं पर मूल धर्म से दोनों बहुत दूर की चीज़ें हैं। इसलिए सभी मुसलमान लीगी नहीं थे, नहीं हैं, और अपने को सनातन हिन्दू कहते गांधी से लेकर सभी हिन्दू हिन्दु महासभा का अंग नहीं बन गए। दोनों धर्म के नाम पर अन्य (other) को दिखाकर सांप्रदायिक राजनीति को मज़बूत करती रहीं। इस प्रयास में राष्ट्र और राष्ट्रप्रेम नहीं, कुटिल राजनीतिक स्वार्थ मात्र रहा। वे राष्ट्र और राष्ट्रप्रेम के नाम पर मनुष्य को बांटने का काम करती आ रही हैं। मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनाना इस संकीर्ण राजनीति का प्रत्यक्ष कार्य है। आज भी सांप्रदायिक शक्तियाँ इसी रास्ते पर आगे बढ रही हैं। इस तरह के नकारात्मक प्रयासों को रोकने केलिए उक्त धर्म के भीतर से लोग (internal criticizer) आगे आकर समाज में फैलते गलत धारणाओं एवं अंधविश्वासों का खुलासा करना है।

नैतिक लोकतंत्र में ही अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक दोनों शान्ति एवं समाधान के साथ एकसाथ जी सकते हैं। लोकतंत्र बहुमत के हुंकार, दादागिरी एवं मनमानीपन की जगह नहीं है। कहीं संघपरिवार का व्यवहार अल्पसंख्यकों-दलितों के प्रति संतोष जनक नहीं है। लोकतंत्र की सबसे बडी

विशेषता यह है कि उसमें मानवाधिकार की संभावनायें सबसे अधिक हैं। वहाँ अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक के बीच कोई भेद-भाव नहीं है। विडंबना यह है कि यहाँ अल्पसंख्यक सन्देह में जी रहे हैं। उस पर भय व शंका का बादल छाया हुआ है। शंका और भय से आतंकित लोगों के राष्ट्रप्रेम को हम शंका की दृष्टि से देखते हैं। इससे खतरा और भी गंभीर हो जाता है। ये लोग अपने में सिमटने को मजबूर होते हैं, अपने ही धर्मावलंबियों के साथ, अपनी ही भाषा बोलनेवालों के साथ आ जुडने लगते हैं। यह एक ही राष्ट्र में कई छोटे-छोटे राष्ट्रों को जन्म देगा। अल्पसंख्यकों को भय एवं शंका से मुक्त करके विकसित राष्ट्रों के नागरिकों के समान स्वतंत्र जीवन बिताने का मौका प्रदान करना प्रशासन का दायित्व है। इससे पृथक राष्ट्रवाद का मामला ज़रूर मिट जाएगा।

गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास के घेरे में पडे लोगों को सांप्रदायिक शक्तियाँ आसानी से भटक सकती हैं। इससे लोगों को अवगत करना अनिवार्य है। वैज्ञानिक चिन्तन और तर्क बुद्धि के बल पर लोगों द्वारा सांप्रदायिकता का तिरस्कार कराना है। तभी सांप्रदायिकता से हम मुक्त हो सकते हैं। इसके लिए शिक्षा का नवीनीकरण करना पहली शर्त है। शिक्षा का नवीनीकरण के साथ पाठ्यक्रम में मानवीय एवं सामाजिक विषयों को प्रमुखता के साथ जोडना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा को सरकार के नियंत्रण में लाना चाहिए। आज स्कूलों में अलग-अलग मॉरल साइन्स पढाने का कार्य चल रहा है और ये मॉरल साइन्सस अपने-अपने धर्म के साथ संबन्ध रखते भी हैं। ये वर्ग एवं वर्ण, जाति व धर्म के खानों में बच्चों को कैद करते हैं। ऐसे धार्मिक छात्र सेकुलर छात्रों की अपेक्षा कई क्षेत्रों में पीछे हो जाते हैं। शिक्षा का उद्देश्य मात्र नौकरी पाने का एक जरिया मात्र हो गया है। आज शिक्षा ज्ञान, नैतिकता, आदर्श, मानवीयता, सामाजिक-राजनीतिक दायित्व से कोसों दूर पहुँच गयी है। वह मौलिक चिन्तन के अभाव में जानकारियों तथा सूचनाओं में सिमटने लगी है। कई विकसित देशों में मेडिकल साइन्स के छात्रों को भी मानवीय विषयों पर आधारित पर्चा जोडा गया है। उस पर भी हमें ध्यान देना चाहिए। शिक्षा के नवीकरण के बिना सामाज को असली तन्दुरुस्त सामाज नहीं बना सकते हैं। दुख की बात यह है कि यहाँ पाठ्यक्रम एवं शिक्षा संस्थाओं पर सत्ता अपनी पकड मज़बूत कर रही है और ज्ञान को गुलाम बनाने का तंत्र अपना रही है। साथ ही धर्म को लोकतंत्र के केन्द्र में प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी कई कोणों से जारी है। वैज्ञानिक राजनितिक चिन्तन तथा जनता को सचेत करके नैतिक लोकतंत्र को मज़बूत करना इससे राहत पाने केलिए अनिवार्य हो गया है। उसके प्रचार-प्रसार शिक्षा के द्वारा ही संभव है। इसके लिए शासन को असली अर्थ में प्रशासन होना है।

सभी धर्मावलंबियों के बीच धार्मिक कट्टरवादी, आतंकवादी, विघटनवादी होते हैं और ये सब खतरनाक भी हैं। इसलिए उन सबका विरोध समान ढंग से करना चाहिए। लोकिन बहुधर्मी देश के लोकतांत्रिक व्यवस्था में बहुसंख्यक सांप्रदायिकता ज़्यादा खतरनाक होती है, इसलिए उसपर अधिक सावधानी बरतनी पडती है। बहुसंख्यक अल्पसंख्यक व अन्य धर्मावलंबियों को आत्मीय मान लें और उनमें अशान्ति, असुरक्षा, सन्देह को उगने व पनपने का मौका न दें। हमेशा मनुष्यता की लौ को कसकर पकड लें। इस प्रकार समाज को तन्दुरुस्त बनाने के प्रयत्न में सभी भागीदार हो जाएं।

पी. रवि

अनुक्रम

संपादकीय : इस लडाई का अन्त कब होगा?		5
अतिथि संपादकीय : फासीवाद के प्रतिरोध में		8
सांप्रदायिकता का हिंदी साहित्य पर प्रभाव	डॉ. असगर वजाहत	11
सांप्रदायिकता का सांस्कृतिक सिद्धांत	डॉ. विनोद शाही	16
संप्रदायवाद और सांप्रदायिकता	डॉ. हरपालसिंह 'अरुष'	20
नागौर, राजस्थान में दलित दमन डांगावास के निहितार्थ	डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी	24
साम्प्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और वर्तमान संदर्भ	डॉ. हरियश राय	31
साम्प्रदायिकता : सैद्धांतिक और ऐतिहासिक अनुशीलन	प्रो. रामप्रकाश	38
सांप्रदायिकता : विचारधारा और ऐतिहासिक संदर्भ	डॉ. पंकज पराशर	54
दंगा ग्रस्त शहर : कुछ काव्य - स्थितियाँ	विजय कुमार	68
साम्प्रदायिकता का स्वरूप और चुनौतियाँ	डॉ. वीरेन्द्र मोहन	70
साम्प्रदायिक हिंसा का चक्रव्यूह और स्त्री अस्मिता	डॉ. प्रोमिला	78
'क्रूरता की संस्कृति' से संघर्ष करती समकालीन कविता	डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	86
समकालीन कविता में सांप्रदायिक विकलता का परिदृश्य	डॉ. प्रिया ए.	94
विभाजन की दारुण स्थिति	स्नेहा. ए	99
सांप्रदायिकता का बदलता चेहरा और समकालीन उपन्यास	डॉ. पी. रवि	104
सांप्रदायिकता और आदिवासी साहित्य	डॉ. भीमसिंह	110
शब्दबद्ध होती कश्मीर की चीखें	डॉ. तरसेम गुजराल	119
सांप्रदायिकता विमर्श का औपन्यासिक ब्योरा	डॉ. सन्ध्या. ई.एन.	129
प्रेम बनाम साम्प्रदायिकता	डॉ. प्रीति सागर	137
हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के विरुद्ध विकल्प की तलाश	डॉ. प्रिया के.	143
हिंदी उपन्यासों में चित्रित सांप्रदायिकता	डॉ. विष्णु सरवदे	147
साम्प्रदायिकता और पुलिस	डॉ. बीरपाल सिंह यादव	150
'...और अंत में प्रार्थना' : धर्म से सराबोर मनुष्य की प्रस्तुति	डॉ. षमिनास	158
सांप्रदायिक आतंक के अप्रत्याशित फैलाव में दम घुटती मानवीयता	डॉ. पी. गीता	163
सांप्रदायिकता के प्रतिरोध : नुक्कड नाटकों की भूमिका	डॉ. आर. शशिधरन	168
साम्प्रदायिकता का घिनौना चेहरा	डॉ. राधामणि. सी	176
सांप्रदायिक आघात प्रत्याघात के समीकरण और स्त्री	डॉ. शान्ती नायर	181